वैदिक संगीत में सामगान का स्वरूप

डॉ. भुवनेश्वर लाल
संगीत अध्यापक, मैक्स इटरनैशनल स्कूल, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

Abstract

Vedas are oldest scriptures of the world. There are various incidents in the Vedas where we find the references of music. Samaveda is known for its musical richness. Samgana is one of the most popular musical form of the Vedic music.

Key words : Vedic music, Samagana, Richa.

संगीत का मानव जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व के वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से इस बात का वर्णन मिलता है कि संगीत की उत्पति वेदों से हुई है। वेदों में प्रमुख सामवेद को माना गया है। मन्त्रों में ऋग्वेद और यजुर्वेद का अपना महत्व है, परन्तु सामवेद का महत्व सर्वोपरि है। जैमिनीय सूत्र अनुसार गीति के लिए ही साम संज्ञा है–"गीतिषु सामाख्या"। अर्थात, जो मन्त्र गाये जाते है वही साम कहलाते हैं। साम शब्द का मूल अर्थ गान अर्थात गेय पद रहा है, तथापि अधिष्ठान के रूप में ऋचाओं से सम्बन्ध के कारण उनके लिए भी साम शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे वैदिक संगीत में उल्लेख मिलता है कि साम का गान ऋगवेद की ऋताओं के आश्रय से किया जाता रहा है। गान के लिए साहित्य की आवश्यकता सदैव रही है। ललित एवं छन्द में काव्य, जो कि देव अराधन के लिए लोकप्रिय माध्यम थे,काव्य तथा संगीत के मेल से निर्मित "गेय" ईश्वर अराधना के लिए प्रभावशाली माना जाता है। जैसा कि इस श्लोक में कहा है:

सामशब्द वाच्चस्य गानस्य स्वरूपं ऋग्क्षरेषु कुष्टदिभिः
सप्तभिः स्वरैरक्षर–विकारदिभिश्च निष्पाद्यते।

अर्थात साम, जो कि मौलिक रूप से गान का द्योतक है, साहित्य के माध्यम से अभीष्ट विस्तार को प्राप्त होता है।

अथर्ववेद में यह कहा गया है कि वाणी का रस "ऋक" है, "ऋक" का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है। इससे साम की स्पष्ट होती है। साम की महत्वा का कारण उसकी स्वस्मयता है। स्वरमय होने के कारण ही "ओंकार" को सभी वेदो में श्रेष्ठ बताया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में "सामवेद" को ही श्रेष्ठ घोषित किया गया है। गीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है:–

वेदानां साम वेदोंस्मि।

श्रीमद भागवत गीता 10/22

अर्थात वेदों में मैं स्वयं "सामवेद" हूँ।

साम की महत्वा के कारण भारतीय परम्परा में साम के अध्ययन अध्यापन तथा गान पर विशेष ध्यान दिया गया है। वैदिकों की अवधारणा थी कि जिस यज्ञ में "साम का गान" नही वस्तुत यज्ञ नही है। इस भावना के कारण सम्पूर्ण "यज्ञों" में सामगान का प्रयोग होता था। पौराणिक परम्परा के अनुसार

कृष्ण द्वैपायन व्यास ने अपने द्वारा संकलित साम सहिता का अध्यापन "जैमिनि" को करवाया। वायु, विष्णु आदि पुराणों के अनुसार जैमिनि साम के आद्याचार्य थे। जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को, सुमन्तु ने, सुन्वान को, सुन्वान ने अपने पुत्र सुकर्मा को सामवेद की शिक्षा दी थी। जैमिनि सूत्र भाष्य कार के मत में "साम शब्द" "सामवेदे सहस्त्र गीत्युपाया" गीति किया है, जो धुनें ऋचाओं के आधार से गायी जाने वाली "साम" कहलाती है। वेदों को संस्कृत, भारतीय संस्कृति तथा संगीत का उदगम स्थल माना जाता है। संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार मूल सामवेद में केवल 75 नवीन ऋचाओं का उल्लेख है। अन्य सभी ग्रन्थ ऋग्वेद से ही संग्रहीत है। यद्यपि दोनों का प्रयोजन एक अर्थात् ईश्वर–स्तुति ही है। परन्तु सामवेद संगीतबद्व है। अभिप्राय यह है कि ऋग्वेद की जटिलताओं को गान–किया का लक्ष्य सृष्टि और सृष्टिकर्त्ता की उपासना करना ही है।

"नाद–विनोद" ग्रन्थ में सामदेव की महिमा तथा प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा गया हैः–

सामवेदात्संगीते गान्धर्वोपवेद जायते।
सामवेदात्स्वरोत्पतिर्ष जदिस्वर उच्चते।।
स्वरे वेदाश्च शास्त्राणी स्वर गांन्धवर्मुन्तम।
स्वरेप्रलोक्यमायन्ति स्वर आत्मस्वरूपकमं

अर्थात् सामवेद से संगीत में गान्धर्व वेद की उत्पति होती है तथा सामवेद से षडजादि स्वरों की उत्पति होती है। स्वर में वेद और शास्त्र निहित है और स्वर में ही उतम गान्धर्व (संगीत) विद्यामान है। स्वर में तीनों लोक स्थित है और स्वर आत्मा का स्वरूप है।

यज्ञ याग की वृद्वि के कारण उद्गाता नामक ऋत्विजों का एक स्वतन्त्र वर्ग बन गया और यज्ञ यागों की प्रारम्भिक अवस्था में इस कार्य के लिए ऐसे गायक विद्वान को चुना जाता था जो आवश्यक ऋचाओं को सुस्वर स्वरावलि में गा सके। संगीत का उपयोग जैसे धर्मिक कार्यों में आवश्यक था, वैसे ही लौकिक समाराहों पर भी। यज्ञ याग की वुद्वि के साथ जैसे ही संगीत निपुण ऋत्विजों की आवश्यकता आ पडी, सामगों का एक स्वतन्त्र वर्ग बन गया, जिनका कार्य था ऋग्वेद की ऋचाओं का शास्त्रीय तथा परम्परानुगत गायन करना। इन्हीं ऋचाओं को एक स्थान पर संकलित करने में सामवेद का निर्माण हुआ।

समवेद वस्तुत सामगान तथा उन गानों की आधारभूत ऋचाओं का संकलन है। इसलिए साम संहिता के रूप में हमें दो प्रकार की संहितायें मिलती है–1) आर्चिक–संहिता 2) गान संहिता। जिन ऋचाओं पर साम गाये जाते है उन सामयोनि अर्थात् साम मूलक ऋचाओं का संग्रह आर्चिक संहिता है। यह संहिता साम के साहित्य मात्र को संकेतिक करती है। सामवेद की दूसरी प्रकार की संहिता, गान संहिता है जिसमें गानों का स्वरमय रूप संकलित हुआ है।

आर्चिक संहिता के दो भाग है (क) पूर्वाचिक (ख) उतरार्चिक। पूर्वार्चिक में 6 अध्यायों में प्रथम अध्याय में पाँच अग्नि, इन्द्र, पवमान आदि देवताओं की स्तुति–परक है। प्रथम से लेकर पंचमाध्याय तक ही ऋचायें "ग्राम गान" के नाम से अभिहित है, केवल षष्ठ अध्याय "आरण्यगान" के अन्तर्गत है। उतरार्चिक नामक द्वितीय विभाग में 9 प्रपाठक है। समग्र मन्त्र संख्या 1225 है। पूर्वार्चिक तथा

उतरार्चिक की रचना मे थोडी विभिन्नता प्राप्त होती है। पूर्वार्चिक में सामों की केवल यानिभूत अर्थत मूल भूत ऋचायें पाठित है तथा तृचों तथा प्रगाथों का संग्रह है। उतरार्चिक में जो प्रगाथ अर्थात तीन–चार ऋचाओं में सम्मिलित सुक्त होती है। सामगान के अन्तर्गत गाये जाने बाले "स्त्रोतों" का निर्माण इन्ही उतरार्चिक की ऋचाओं से होता है। सामवेद में अग्नि, इन्द्र और सामदेव पर ही अत्याधिक ऋचायें हैं। उसके कारण में प्राच्य वेदान्ती और योगी स्व. श्री अरविन्द का कथन है कि मानव को सूर्य से बुद्वि अग्नि से मानसिक शक्ति तथा सोमदेव से भावनायें प्राप्त होती है तथा, "होता" के कारण ही वेद काल के लोग देवताओं की आराधना करते थे। सामगान के विषय वस्तु में उक्त देवताओं की स्तुति तथा भाषा केवल संस्कृत में रही हैं।

सामवेद की दूसरी प्रकार की संहिता, या यह कह सकते है कि मूल संहिता "गान–संहिता" है। इनमें पूर्वार्चिक तथा उतरार्चिक में संकलित सामयोनि–ऋचाओं पर जो साम गाये जाते हैं उन सामों का संकलन किया गया है। वस्तुतः इस संहिता में साम के स्वरमय रूप का संकलन हुआ है।

आर्चिक संहिता की तुलना आधुनिक परिभाषा में संगीत के ऐसे ग्रन्थों से की जा सकती है जिनमें केवल स्वरहित बंदिशों का संकलन होता है, जबकि गान संहिता की तुलना ऐसे ग्रन्थों से की जा सकती है, जिनमें स्वरलिपि संहिता बंदिशों का संकलन हुआ है। इस प्रकार गान–संहिता आर्चिक संहिता से भी अधिक महत्वपूर्ण है। गान संहिता की दृष्टि से साम–संहिता चार भागों में विभक्त हैः– (1) ग्रामेगेयगान (2) आरण्यगेयगान (3) ऊहगान (4) ऊह्यगान।

ग्रामगेयगान के लिए "वेयगान" तथा "प्रकृतिगान" संज्ञा भी है। दक्षिण भारत में कृष्णस्वामी श्रौतिन् के द्वारा सम्पदित सामवेद में पूर्वार्चिक के गेय रूपान्तर को "वेयागान" संज्ञा दी गई है। ग्राम–गान के अन्तर्गत पूर्वार्चिक के केवल प्रथम पांच अध्याय का समावेश है। इनमें अन्तर्भुत गायत्र, आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान आदि सूत्कों को मूलभूत सप्तगानों का अंगभूत माना जाता है।

आरण्यक गान का सम्बन्ध पूर्वार्चिक ग्रन्थ के षष्ठ अर्थात् अन्तिम अध्याय से है। साम के सप्त मूलभूत गानों में अर्कद्वन्द्वव्रत, शुक्रिय तथा महासाम्नी का अन्तर्भाव आरण्यक गान होता है। इसी गान के लिये 'रहस्य' तथा 'रहस्यगान' भी संज्ञाएं है। आरण्यक गान का स्वरूप वन्य संगीत की स्वर लहारियों से निर्मित हुआ हो और ग्रामेगेय के परिमार्जित एवं परिस्कृत रूप से सर्वथा पृथक रहा हो। ग्रामीण तथा नागर संगीत के मध्य अन्तर मूत कल्पना वेयगान तथा आरण्यगान के बीच मे की जा सकती है। इसे प्रकृति गान की संज्ञा दी गई है। ऊह तथा ऊह्य इन दोनों गान प्रकारों का आधार उपरिनिर्दिष्ट तथा आरण्यगान है। ग्रामगेय पर आधरित गान परिवर्तित स्वरूप में ऊहग्रन्थ में उपलब्ध है, आरण्यगान का गायन की कल्पना से परिवर्तित रूप "उहगान" स्त्रोत–प्रकार का ज्ञान इन्ही ग्रन्थों से सम्भाव्य है।

ग्रमेगयेगान समाज के गान योग्य माना जाता था। आरण्यगयेगान जंगल में ऋषियों द्वारा गाने योग्य गान जाता था ऊहगान में सामगान के अवसर पर प्रयोजनीय सामों का नाम है। इसमें स्वरादि का आश्रय लेकर ही उह्गान का निर्माण किया गया। उह्यगान उहय रहस्य मान है। इसका गायन सर्व साधरण के समान निबिद्व था। सामगान की पांच भक्तियों या पंचविध बताये गये है। साम का आरम्भ

'ओम' से किया जाता है। उपगायकों को सामगान के अंत तक निरन्तर स्वर का गान मन्द्र से करने का विधान था। सामगान का अन्त भी 'ओम' के उच्चारण से ही किया जाता था। सामगान की पांच विभक्तियां प्रस्ताव, उदगीथ, प्रतिहार, उपद्रव, निधन है। सामगान में प्राचीन वेदगान अवरोहात्मक माना जाता था। वैदिक संगीत की दो शाखाएं निबद्व तथा अनिबद्व अवधारणा में बांटा गया था। इसमें एक शाखा में लौकिक संगीत तथा दूसरी शाखा में शास्त्रीय संगीत की अवधारणा है। लौकिक संगीत में ऐसे गीतों का चयन किया है जो व्यक्ति विभिन्न सामजिक अवसरों पर सबके मनोरंजन के लिए तथा स्वेच्छा से गाए जाने वाला संगीत है। दूसरा रूप शास्त्रीय संगीत में गान की कलात्मकता एक विशेष पद्वति एक विशेष प्रकार का भाव से सम्बद्वता होता है। इसे निबद्व संगीत भी कहते है। मंतगमुनि ने लोक संगीत को अनिबद्व गान की संज्ञा प्रदान की तथा 'मार्ग' को निबद्व शास्त्रीय संगीत की संज्ञा प्रदान की है।

सामगान की संहिताओं में साम, ब्राहमणों में साम, आरण्यको में साम उपनिषदों में साम, वेदांग में साम, का उल्लेख मिलता है। साथ ही वैदिक यज्ञों में साम गायन का प्रयोग, सामों के देवता विचार, यज्ञ, साम, स्वर प्रकिया जैसे उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वर आदि का महत्व बताया है। संगीत की मूल शाखा सामवेद को ही बताया गया है। इसमें प्रमुख संहिता आर्चिक एवं गान संहिता में विभाजित किया गया है। लेकिन आगे चलकर सम्यक् सम्पादन कठिन हो गया। क्योंकि साम यज्ञों की विधि बहुत कठिन हो गये और यज्ञों से फल प्राप्ति कैसे हो सकती थी। ब्राह्मण काल में ही यद्यपि यह प्रवृति दिखायी पड़ती है कि वैदिक यज्ञो के विधिवत् सम्पादन करने वाले जो फल प्राप्त होता है वही यज्ञ विधियों के जानने वाले को भी प्राप्त होता है। इसलिए ऐसे यज्ञ आरम्भ हुए जो कि शीघ्र ही यज्ञ फल की प्राप्ति करवा सके।

सामवेदियों की परम्परा में भी यह प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है कि साम विधान इस बात का स्पष्ट रूप करता है कि केवल सामगान के द्वारा ही यज्ञो के सम्पादन का फल प्राप्त किया जाता है। सामवेद संहिता में कहा गया है कि 'अग्य आयदि वीतये' से उत्पन्न तीन सामों का 9–9 बार गान करने से अग्नि के अधार का फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार इन्द्र, पावमान आदि का फल भी यज्ञ के माध्यम से प्राप्त होता है। गायन के लिये इस साहित्य की गीत संज्ञा मिलती है। गायन का प्रतिनिधित्व 'साम गायन' यज्ञ में करता है। यज्ञादि अवसरों पर साम गायन आवश्यक था क्योंकि तभी विभिन्न फल की प्राप्ति यजमानकर सकता था। यज्ञ में साम गायन स्तुति रूप में होता भी होता था जैसे सूर्य, अग्नि की स्तुति साम स्त्रोतों द्वारा की जाती थी। साम गायन में देवी शक्ति का निवास माना जाता था। धार्मिक अवसरों व यज्ञ धार्मिक संस्कारादि से सम्बन्धित होने के कारण यह संगीत लौकिक गायन के अन्तर्गत नही आ सकता। ऋग्वेद में साम की उत्पति पुरुष प्रजापति से माना गया है।

वेदों में वादन की संगति के साथ भी गायन होता था। गायन के साथ तन्त्री सुष्टि अबनध वाद्यों का वादन होता था। यज्ञ में फल प्राप्ति के लिए यज्ञ अवसर पर उद्गाताओं की पत्नियाँ भी गायन की संगति विभिन्न वीणाओं द्वरा करती थी। वीणा वादन ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के द्वारा यज्ञ के अवसर पर करना आवश्यक होता था। वैदिक युग में चार वेदों का वर्णन किया है जिसमें कहा गया हैः–

1) ऋग्वेदः– यह प्राचीन माना जाता है तथा इसमें ऋचाओं का पाठ किया जाता है।

2) यर्जुवेदः– मन्त्रों का प्रयोग यज्ञ भागदि में किया जाता है।

3) अथर्ववेदः– लौकिक व्यवहार के प्रयोग में प्रयुक्त संकलन है, जैसे वशीकरण उच्चाटन आदि।

4) सामवेदः– यह वेदों में अन्यतम है। इस वेद में गायन की प्रधानता है और भारतीय संगीत में वैदिक संगीत की मूलधार 'सामवेद' को माना गया है।

वैदिक सामगान के मूल स्वर तीन ही बताए गये हैं। जिनमें कुष्ट, मन्द्र और अतिस्वार्य जो क्रमशः उदात्त, अनुदात्त स्वारित के समक्ष रहें होगें। कालान्तर कुष्ट और मन्त्र के बीच अवरोही क्रम से अन्य चार स्वर–आयामो का गान होने लगा होगा। जिनका नाम प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ मन्त्र तथा अतिस्वार्य स्थान तथा इनका नाम षडज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम धैवत तथा निषाद नामों से उल्लिखित है। वैदिक सामगान में जिनमें जिसका प्रयोग होता है उसको गान संहिता क्रमशः 1 से 7 अंकों का प्रयोग किया जाता है। सात स्वरों के प्रतीक रूप 1–2–3–4–5–6–7 ये अंक गान संहिता में दो प्रकार में प्रत्युक्त है। – एक वर्गों के उपर जैसे उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के लिए, आर्चिक संहिता में 1 ,2, तथा 3 अंको का प्रयोग किया जाता है। सामवेद की गान संहिता में उतरार्चिक के आधार पर जो गान संकलित है उनका स्वरूप तृचात्मक है। यज्ञ के अवसर पर इन तृचों पर गाये जाने बाले त्रिवृत, पंचदशः आदि स्त्रोतों का विधान ब्राहमणों तथा श्रोत ग्रन्थों में किया गया है। लेकिन आज सामगाान की परम्परा लुप्त हो गई है। सामगान के सिद्धान्त प्रमुख ग्रन्थों में जो मिलते है परन्तु आधुनिक संगीत के साथ तालमेल नही बनाया जा सकता है क्योंकि इस विषय के संकेत मात्र दिये गए हैं।

संदर्भ

शर्मा, डॉ. पंकज माला (1996) सामगान, उदभव, व्यवहार एंवम सिद्वान्त, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन होशियारपुर।

बन्धोंपाध्याय, श्रीपद (1976) संगीत का विकास और विभूतियां, चौखम्बा ओरियन्आलिया, वाराणासी।

परांजेप, डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर (1980) भारतीय संगीत का इतिहास, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

शर्मा, डॉ. सुनीता (1996) भारतीय संगीत का इतिहास, संजय प्रकाशन, दिल्ली।

गुप्ता सरिता, वैदिक युग का संगीत, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

विजयलक्ष्मी, डॉ. एस.एम. (2006), संगीत निबन्ध माला, संजय प्रकाशन दिल्ली।

व्यास रेखा (2006) सामवेद संहिता, संस्कृत साहित्य प्रकाशन दिल्ली।

मिश्रा डॉ. पूनम (2006) प्राचीन भारत में संगीत, राधा पब्लिशन्स, नई दिल्ली।